शिक्षा का आधार–कला

❑ प्रेमचन्द गांधी

कला शिक्षा के निर्विवाद महत्व के बावजूद मुख्यधारा विद्यालयों में इसकी स्थिति घोर असंतोषजनक है। स्वयं शिक्षक वर्ग कला-शिक्षण को लेकर अगंभीर और उदासीन है । हिन्दी प्रदेशों का समाज कला की उपेक्षा करने में अग्रणी है । ऐसी स्थिति में कला-शिक्षण पर, विशेषकर प्रारंभिक स्तर पर कला-विधाएं सिखाने के लिए उपयोगी पुस्तकों का दुर्लभ होना स्वाभाविक है । देवी प्रसाद की पुस्तक इस क्षेत्र में क्लासिक का दर्जा रखती है । इसमें उनका मौलिक चिंतन गांधी, टैगोर और चित्रकार नंदलाल बसु की परंपरा को भी समेटे है । आगे हम कला-शिक्षण विषयक कुछ और पुस्तकों पर भी चर्चा करेंगे ।

दरअसल, भारतीय शिक्षा पद्धति के पाठ्यक्रम को प्रारंभ से ही बड़ों के अनुसार तैयार किया गया है । हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे हमारे जैसे या हमसे अच्छे हो जायें, इस चाहने में कोई हर्ज नहीं, किंतु क्या वे अपनी उम्र में ही हमारे जैसे हो सकेंगे ? कदापि नहीं । वस्तुस्थिति यह है कि हमारी बड़ों की दुनिया से बच्चों की दुनिया बिल्कुल अलग है और हम उसे जानना तो दूर पहचानते तक नहीं । इसलिए बच्चों की कला के बारे में हमारे ख्याल भी वही हैं जो हमारे अपने बारे में हैं । हम बच्चों के रचनात्मक संसार को सयानों की नजर से देखते हैं और उसमें गलतियां ढूंढते हैं और निर्देश देकर या नकल द्वारा बच्चे को असमय ही सयाना बनाने की कोशिश करते हुए उसके स्वाभाविक रचनात्मक विकास का द्वार हमेशा के लिए बंद कर देते हैं ।

बच्चों की कला-शिक्षा के बारे में भारत में वर्षों से एक पुस्तक चर्चा के केंद्र में बनी हुई है जिसके आधार पर हम कला का एक रचनात्मक पाठ्यक्रम तैयार कर सकते हैं । यह पुस्तक है देवी प्रसाद की 'शिक्षा का वाहन: कला' । देवी प्रसाद ने एक लम्बे समय तक महात्मा गांधी के साथ रहकर बच्चों के साथ काम किया था । इस पुस्तक में उनके विचार गांधी जी की 'बुनियादी तालीम' से लेकर 'नई तालीम' पद्धतियों और विभिन्न कलाकारों-शिक्षकों - चिंतकों और स्वयं के अनुभवों और साधना पर आधारित हैं । यद्यपि यह पुस्तक बच्चों की कला शिक्षा विषय को केंद्र में रखकर लिखी गई है, किंतु इसका दायरा स्वत: प्रसार पाकर संपूर्ण शिक्षा-पद्धति को अपने दायरे में ले लेता है । पुस्तक की एक मूलभूत स्थापना यह है कि सच्ची शिक्षा प्रकृति के साहचर्य में मिलती है और कला-शिक्षा शिक्षक और शिक्षार्थी के बेहतरीन सामंजस्य से संभव है, जिसमें प्रत्येक शिक्षक का कलाकार होना आवश्यक नहीं है बल्कि सभी शिक्षक कलात्मक दृष्टि वाले शिक्षक होने चाहिये। इस पुस्तक पर महात्मा गांधी के अलावा गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर और कलागुरू नन्दलाल वसु तथा फ्रांस सिजेक जैसे कलाकारों का गहरा प्रभाव है ।

देवी प्रसाद की मान्यता है कि संपूर्ण शिक्षा पद्धति सृजनात्मकता पर आधारित होनी चाहिए क्योंकि व्यक्ति और समाज के एक्य की पुनर्स्थापना करने वाली कला-दृष्टि ही ऐसी शिक्षा दे सकती है जिससे एक स्वतंत्र मनुष्य का निर्माण होता है। इसकी प्रक्रिया प्रकृति से प्रत्यक्ष परिचय, और साहचर्य से शुरू होती है जो शनै:शनै: बंधुत्व, सामूहिकता और संवेदनशीलता का बालक में विकास करती है । प्रकृति के साहचर्य और उसके साथ बालक की एकात्यानुभूति उसे सचेतन बनाती है, संवेदनशील बनाती है । प्रकृति का यह साथ बालक की दृष्टि को दो तरह से प्रभावित करता है, पहला प्रत्यक्ष-चाक्षुष अनुभव द्वारा और दूसरे मस्तिष्क में इन अनुभव से सृजित विचारों के माध्यम से । आंख और मानस का यह समन्वय प्रकृति के साथ बालक को एकाकार कर देता है । कला-शिक्षा के माध्यम से बालक में जो कला-बोध विकसित होता है वह उसके स्वाभाविक मानसिक विकास को गति देता है।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, बच्चों की कला को बच्चों की नजर से ही देखा जाना चाहिए । बच्चे प्रत्येक कार्य में आनन्द भाव की खोज करते हैं, यदि हम शिक्षा में इस पर ध्यान दें तो समूची शिक्षा-पद्धति को बदलना होगा। कला-शिक्षा में यही बात ध्यान देने की है कि जिस कला में बालक को आनन्द प्राप्त हो रहा है वही उसके आत्म-प्रकटन का माध्यम है । हम बड़ों के पास कहने के लिए एक भाषा है जो हमारे मनोभावों को प्रकट करती है । लेकिन बच्चों के पास शाब्दिक भाषा नहीं है, उसके पास बिम्ब होते हैं, जो चित्रों की भाषा में बाहर आते हैं । यदि हम बच्चों को ऐसा करने से रोकते हैं तो वे कुंठाग्रस्त हो जाएंगे और अनेक मनोविकारों का शिकार हो जाएंगे । बच्चों के भीतर छुपी हुई भावनाओं और आवेगों का प्रकटन कला के माध्यम से सहज होता है । कला के माध्यम से हम बच्चों के भीतर छुपी हुई शक्ति को भी पहचान सकते हैं ।

इस पुस्तक में बच्चों की कला का एक विकास क्रम बताया गया है, जो बच्चों के काम को समझने में हमारी मदद करता है। पहली अवस्था वह होती है जब बच्चा पेंसिल, कोयले, चाक या अन्य साधनों से सीधी आडी तिरछी लकीरें खींचने लगता है और धीरे धीरे गोल आकृतियां बनाने लगता है । इस अवस्था में बच्चे का अपने स्नायुओं पर नियंत्रण नहीं होता और वह यह नियंत्रण प्राप्त करने की कोशिश करता है। एक प्रकार से यह बच्चों का साधनों से परिचय का काल है । इसके बाद की अवस्था में बच्चा आकृतियां बनाने लगता है और उनका नामकरण भी करता है, इस काल में बच्चा चीजों को प्रतीक के रूप में लेता है और अपने मनोभावों को बिम्बों के रूप में अंकित करता है । इसके बाद की अवस्था में बच्चे को रंगों का बोध होने लगता है जो क्रमश: स्पेस और कम्पोजीशन तक बढ़ता है । इसके बाद का काल बच्चे का वास्तविकता-परिचय काल होता है, वह अपने चित्रों को वास्तविक दुनिया के अनुरूप देखने-बनाने की कोशिश करने लगता है । इसके पश्चात बच्चा किशोर अवस्था में आ जाता है, जहां शिक्षा-पद्धति के कारण कला-शिक्षा को महत्वहीन मानकर छोड़ दिया जाता है और दूसरे विषयों को महत्व दिया जाने लगता है ।

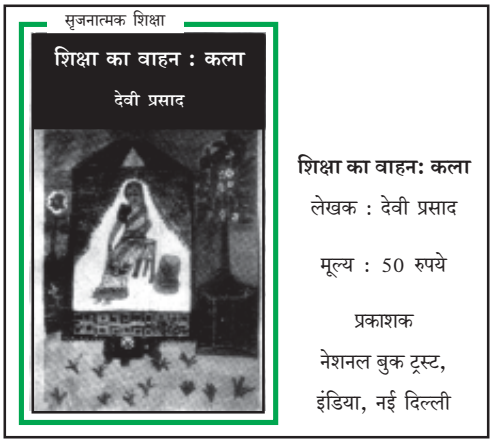

इस अवस्था को मनोवैज्ञानिक और शिक्षाविद बच्चे का संक्रमण काल कहते हैं। हमारी शिक्षा पद्धति इस काल में कला-प्रवृतियों पर रोक लगा देती है और बच्चों के अब तक चले आ रहे सहज स्वाभाविक संतुलित विकास की गति मंद पड़ जाती है। यह बहुत खतरनाक स्थिति है । देवी प्रसाद कहते हैं कि दूसरे विषयों की शिक्षा देने के लिए कला प्रवृतियों को बंद कर देना कतई ठीक नहीं है । उनकी मान्यता है कि सभी विषयों की शिक्षा का माध्यम कला प्रवृतियां होनी चाहिए। वे कहते हैं, ''शिक्षा-क्रम ऐसा होना चाहिए, जिसमें हर काम के पीछे विचार शक्ति का रास्ता अलग बने और बोध का अलग, इसलिए यह जरूरी है कि बुद्धि के विकास को हमेशा बोध का सहारा रहे । यह तभी होगा, जब कला प्रवृत्तियां शिक्षा की बुनियाद बनेंगी । शिक्षा के क्षेत्र में हम जानते हैं कि शिक्षक शिक्षार्थी का संबंध मानव-मानव का ही नहीं, हृदय-हृदय का भी संबंध होना चाहिए क्योंकि यही शिक्षा का उपयुक्त वातावरण है । देवी प्रसाद के अनुसार शिक्षा संपूर्णता पर तब ही पहुंचेगी जब शिक्षा की विषय वस्तु और शिक्षक-शिक्षार्थी के संबंध को ठीक से साध लिया जायेगा । उनके अनुसार, ''व्यक्ति का जन्म एक बार तो मां की कोख में होता है किंतु समाज और प्रकृति में प्रवेश पाने के लिए उसका एक जन्म और होता है । यह है ज्ञान-साधना या सृजनात्मक प्रवृत्तियों द्वारा निर्माण के जरिए । जिस प्रकार पहले जन्म के समय एक दाई की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शिक्षक इस दूसरे जन्म के समय दाई होता है ।'' शिक्षक और शिक्षार्थी के इस संबंध में एक और बात गौरतलब है, वह यह कि दोनों के पास 'चयन-बोध' (सेन्स ऑफ सलेक्शन) होना चाहिए । यदि यह बोध शिक्षक के पास है तो वह बालक में भी इसका ठीक-ठीक विकास कर सकता है, क्योंकि यह कलाबोध का महत्वपूर्ण अंग है । सच्चा शिक्षक बच्चे की कला-कृति में गलतियां नहीं ढूंढता बल्कि उन्हें अलंकार मानता है । जैसा कि फ्रांस सिजेक ने कहा है, ''बालक की कलाकृति की सबसे सुंदर चीज उसकी 'गलतियां' हैं । उसमें जितनी अधिक संख्या में ये गलतियां होंगी, उतनी ही कमाल की वह कृति होगी। और शिक्षक इन गलतियों को जितना सुधारता जाएगा, वह कृति उतनी ही बेजान, मंद और व्यक्तित्वहीन बन जाएगी ।''

पुस्तक में बताया गया है कि शिक्षा पद्धति में कला-शिक्षा प्रारंभ से ही दी जानी चाहिए । बच्चों को सभी प्रकार के साधनों का उपयोग करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। बच्चों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करना चाहिए और उचित मार्गदर्शन देना चाहिए लेकिन इसमें कोई जबर्दस्ती नहीं होनी चाहिए । यूं तो बच्चे चित्र पूरा करके ही दम लेते हैं, लेकिन यदि वे चित्र अधूरा छोड़ दें तो वह पूरा कराना चाहिए लेकिन इस पर दबाव नहीं देना चाहिए। शिक्षकों को सफाई पर जोर देना चाहिए। कला-साधनों की स्वच्छंदता पर भी ध्यान देना चाहिए क्योंकि स्वच्छंदता सौंदर्यबोध को विकसित करती है । स्वास्थ्य की दृष्टि से बच्चों को सीधे बैठने पर जोर देना चाहिए । कला-शिक्षा में प्रकाश का बड़ा महत्व है, इसलिए कक्षा में प्रकाश की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। बच्चों में पेंसिल या ब्रश को उचित दूरी से पकड़ने की आदत डालनी चाहिए क्योंकि इससे बच्चे का हाथ खुलता है और उसे खुलकर काम करने का अवसर मिलता है । शिक्षक को ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों को कला की तकनीक नहीं सिखानी है, बल्कि साधनों का उपयोग कैसे किया जाए, यह मार्गदर्शन देना है।

आठ-नौ वर्ष की उम्र के बालकों को आकारों और रंगों में भेद करना समझाना चाहिए । इसका सीधा तरीका यह है कि प्रकृति के माध्यम से रंगों के नाम भेद की प्रकृति सादृश्य पद्धति पर जोर देना चाहिए । इसमें अंग्रेजी पद्धति का प्रयोग बच्चों का कोई भला नहीं करेगा, उन्हें नुकसान ही करेगा । बच्चों के समूह आयु के अनुसार बनाने चाहिए ताकि सयानों का असर बच्चों पर न पडे ।

सामूहिक परियोजना में सब एक साथ काम कर सकते हैं । कुछ बच्चों द्वारा एक ही चित्र बार-बार बनाना आम समस्या है, शिक्षक को विभिन्न प्रकार से बच्चे की कल्पनाशक्ति को जगाकर दूसरी दुनिया से भी परिचित कराना चाहिए, ताकि ऐसा बच्चा नए नए चित्र बनाने को प्रेरित हो सके । बच्चों में कला-प्रवृत्तियों के प्रोत्साहन के लिए विभिन्न माध्यमों का सहारा लेना चाहिए, जैसे कहानी-चित्रण, विषय देकर चित्र बनाना, सामूहिक चित्र-निर्माण। लेकिन बच्चों पर इनमें से किसी पर भी ज्यादा जोर नहीं देना चाहिए। बच्चों के चित्रों की शिक्षक के स्थान पर बच्चे ही समालोचना करें तो बेहतर होगा।

प्रत्येक बालक की सुविधा और इच्छा के अनुसार उपयुक्त आकार के कागज पर चित्र बनाने की छूट होनी चाहिए । बड़े आकार के कागज पर काम करने से बच्चा खुलकर काम करने को स्वतंत्र होता है । इससे उसका हाथ भी खुलता है और उसका विन्यास-बोध भी गहराता है। कागज की लम्बाई-चौड़ाई में विविधता लाने से कम्पोजिशन की नई-नई समस्याओं से बच्चों का मुकाबला होता है और इसका बोध बढ़ता है । जैसे कम चौड़े और बड़े लम्बे आकार के कागज पर बच्चे रेलगाड़ी बनाना या वृक्षों की कतार बनाना पसंद करते हैं।

वास्तविकता-परिचय काल के अंत में जब बच्चों की उम्र 12-13 साल होती है, उन्हें चित्रों में गहराई देने के उद्देश्य से पर्सपेक्टिव की जरूरत महसूस होती है । अच्छा शिक्षक दूरी इत्यादि के आधार पर सरलता से बच्चों का मार्गदर्शन कर सकता है । इसी प्रकार आठ-नौ वर्ष की उम्र में बच्चों के आकार बोध को विकसित करने के लिए विभिन्न प्रकार की दस्तकारियों से भी उन्हें परिचित कराना चाहिये । वास्तविकता प्रधान अवस्था में और जब बच्चे चित्रकला के प्रति संकोच अनुभव करने लगते हैं तो इस प्रकार की कला-वृत्तियों की ओर मोडकर उनकी सृजनात्मक चेतना को गतिमान बनाए रखा जा सकता है। इसी प्रकार बच्चों का पैटर्न या डिजाइन बनाने के बारे में मार्गदर्शन किया जा सकता है। इसमें बच्चों को अल्पना, मांडणा आदि लोक कला-रूपों के आधार पर नए पैटर्न या डिजाइन बनाने में मार्गदर्शन किया जा सकता है। शाला में बच्चों के चित्रों का व्यक्तिगत आधार पर रिकार्ड रखा जाना चाहिए, ताकि उनके विकास क्रम को समझा जा सके । समय-समय पर उनकी चित्र प्रदर्शनियां लगानी चाहिएं और समय-समय पर विभिन्न शालाओं से चित्र-विनिमय करना चाहिए ।

लेखक की मान्यता है कि किशोर-वय से पूर्व बच्चों को कला इतिहास या कला परिचय की जरूरत नहीं होती । किशोर वय में आने के बाद ही नई-पुरानी कला के परिचय से बच्चों के कला-बोध को विकसित किया जा सकता है। इसमें भी कोशिश यही होनी चाहिए कि प्रकृति के माध्यम से कला तक और कला के माध्यम से प्रकृति तक पहुंचा जाए। स्थायी कला-बोध तभी विकसित होता है जब वह जीवन से संबंधित हो, इसलिए कला-शिक्षा के समूचे ज्ञान को जीवन से जोड़ा जाना चाहिए । बच्चों में सौंदर्यबोध को विकसित करने के अनेक उपाय हैं जिनका निरन्तर प्रयोग करना चाहिए । जैसे खुद के चित्रों का एलबम बनाना, पुस्तक तैयार करना, कक्षा में चित्र-प्रदर्शित करना, टूटी-फूटी चीजों और अनुपयोगी सामान से कलात्मक वस्तुओं का निर्माण करना । ऐसी प्रवृत्तियां बच्चों में सहज होती हैं जो उचित मार्गदर्शन से और विकसित हो सकती हैं । कुछ विशिष्ट आकार लिए पत्थरों, लकड़ी के टुकड़ों वृक्षों, की डालों आदि को देखने की सूक्ष्म दृष्टि कल्पना शक्ति को कलात्मक आयाम देती है । इसी प्रकार पत्र पत्रिकाओं से अच्छे चित्र या फोटोग्राफ आदि का संग्रह करना भी कला-बोध के विकास में सहायक है । लेकिन इसमे ध्यान रखा जाना चाहिए कि बेहूदी तस्वीरें बच्चे जमा न करें । जब बच्चों की कला के इतिहास और सिद्धांतों के ज्ञान देने का समय आता है तब पहले स्थानीय से शुरू करके विश्व की कला संस्कृति के इतिहास और परम्परा से परिचित कराना चाहिए ।

देवी प्रसाद शिक्षा शास्त्रियों के इस विचार से सहमत नहीं हैं कि बच्चा अनुकरण से सीखता है । इसलिए वह चित्रकला में नकल के प्रबल विरोधी हैं । इसके समर्थन में वह फ्रांस सिजेक का यह कथन उद्धृत करते हैं, ''बच्चों की कला वही है, जिसे बच्चा ही निर्माण कर सकता है । कुछ ऐसी भी चीजें हैं, जिन्हें बच्चा भी कर सकता है, लेकिन हम उसे कला नहीं कहते, वह नकल है, नकली है ।'' उनकी मान्यता है कि नकल का अभ्यास कराने से बच्चे के अंदर जो है, वह प्रकाश नहीं पाता और न ही वह प्रकट हो पाता है । नकल का मतलब है कि वह सयानों के जगत में प्रवेश करे । क्योंकि बच्चा जो जानता है उसका चित्र बनाता है और बड़ा जो देखता है उसका। इसलिए यदि असमय ही बच्चों को बड़ों की तरह देखने और करने को विवश किया जाएगा तो यह उसके स्वाभाविक विकास में बाधा पहुंचाएगा।

बच्चों की कला-शिक्षा के क्षेत्र में यह भारत की अनूठी पुस्तक है । शिक्षा शास्त्रियों के बीच इस पुस्तक को लेकर अनेक मतभेद हो सकते हैं, किंतु इस पुस्तक की तर्क-शक्ति इतनी प्रबल है कि अंतत: बच्चे के स्वतंत्र-सहज विकास के मद्देनजर आपको इन विचारों को मानना ही पड़ेगा । दरअसल इस पुस्तक की आधार भूमि जो गांधी-टैगोर-बसु के विचारों का समन्वय है, वही इसकी प्राण शक्ति है । वस्तुत: इस पुस्तक में वर्णित कला-शिक्षा एक समूची जीवन पद्धति है जो हमारे पाठ्यक्रम में दुर्भाग्य से शामिल नहीं है । शायद यही कारण है कि शिक्षा के सारे कार्यक्रम सृजनात्मक और कलात्मक दृष्टि के अभाव में नाकाफी सिद्ध हो रहे हैं । पाठ्यक्रम-निर्माताओं और शिक्षाविदों को इस पुस्तक के आधार पर बहुत कुछ बदलाव करने होंगे, यदि ऐसा हुआ तो यह न सिर्फ बच्चों के हित में होगा, बल्कि पूरे देश की शिक्षा के हित में होगा।◆